© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN : 2348 - 5612 | Volume : 09 , Issue : 04 | October - December 2022

भारत में जाति व्यवस्था कर्क रोग का रूप है

डॉ. रमेश चन्दर(सहायक प्राध्यापक)
कस्तूरी राम कॉलेज ऑफ़ हायर एजुकेशन (नरेला)नई दिल्ली

सार

जातिवाद राष्ट्र के विकास में मुख्य बाधा है। जो सामाजिक असमानता और अन्याय के प्रमुख स्रोत के रूप में काम करता है। भारत में एक जटिल जाति व्यवस्था ने जीवन को काफी हद तक प्रभावित किया है। जाति मे (जैसा कि भारत में कहा जाता है) एक वंशानुगत समूह होता है जो अपने सामाजिक स्थिति को परिभाषित करते हैं। आजादी के इतने सालों के बाद भी, यहाँ जाति पर आधारित सीमांकन आज भी होता है; हालांकि समय के अनुसार, यह सब बदल रहा है। शहरी इलाकों में यह सब अलग नहीं है लेकिन यह स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न जातियों में अंतर स्पष्ट हो जाता है। कभी-कभी जाति-आधारित अंतर एक हिंसक मोड़ ले लेता है और जातियों के आधार पर अलग-अलग समूहों के बीच हिंसक झड़पों का कारण भी बनता है। इसके अलावा विरोधी सामाजिक तत्व अपने निहित स्वार्थ को बढ़ावा देने के लिए जाति व्यवस्था का उपयोग करते हैं।

मुख्य शब्द : जाति, व्यवस्था, सामाजिक, जातिवाद, राष्ट्र, इत्यादि ।

परिचय

जाति व्यवस्था एक सामाजिक बुराई है जो प्राचीन काल से भारतीय समाज में मौजूद है। वर्षों से लोग इसकी आलोचना कर रहे हैं लेकिन फिर भी जाति व्यवस्था ने हमारे देश के सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था पर अपनी पकड़ मजबूत बनाए रखी है। भारतीय समाज में सदियों से कुछ सामाजिक बुराईयां प्रचलित रही हैं और जाति व्यवस्था भी उन्हीं में से एक है। हालांकि, जाति व्यवस्था की अवधारणा में इस अवधि के दौरान कुछ परिवर्तन जरूर आया है और इसकी

मान्यताएं अब उतनी रूढ़िवादी नहीं रही है जितनी पहले हुआ करती थीं, लेकिन इसके बावजूद यह अभी भी देश में लोगों के धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन पर असर डाल रही है।

उत्पत्ति

ऋग वैदिक कालीन वर्ण व्यवस्था (व्यवसाय के आधार पर निर्धारण) उत्तर वैदिक काल के आते आते जाति व्यवस्था (जन्म के आधार पर निर्धारण) में परिवर्तित हो गई थी। यह माना जाता है कि ये समूह हिंदू धर्म के अनुसार सृष्टि के निर्माता भगवान ब्रह्मा के द्वारा अस्तित्व में आए। भारत में जाति व्यवस्था लोगों को चार अलग-अलग श्रेणियों - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र - में बांटती है।

विकास सिद्धान्त के अनुसार सामाजिक विकास के कारण जाति प्रथा की उत्पत्ति हुई है। सभ्यता के लंबे और मन्द विकास के कारण जाति प्रथा मे कुछ दोष भी आते गए। इसका सबसे बड़ा दोष छुआछुत की भावना है। परन्तु विभिन्न प्रयासों से यह सामाजिक बुराई दूर होती जा रही है।

जाति प्रथा की समस्याएं

- **लोकतंत्र के विरुद्ध :-**

लोकतंत्र जहाँ सभी को समान समझता है।एक लोकतांत्रिक देश के नाते संविधान के अनुच्छेद 15 में राज्य के द्वारा धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान के आधार पर नागरिकों के प्रति जीवन के किसी क्षेत्र में भेदभाव नहीं किए जाने की बात कही गई है। अनुच्छेद 17 में अस्पृश्यता का उन्मूलन किया गया है। परन्तु वास्तव में यह आज भी किसी न किसी रूप में विद्यमान है। चुकी जाति व्यवस्था समानता नहीं बल्कि दो वर्गों में वरिष्ठता के सिद्धांत को मानती है अतः यह लोकतंत्र के विरुद्ध है।

- **समाज का अंग:-**

निःसंदेह जाति प्रथा एक सामाजिक कुरीति है। ये विडंबना ही है कि देश को आजाद हुए सात दशक से भी अधिक समय बीत जाने के बाद भी हम जाति प्रथा के चंगुल से मुक्त नहीं हो पाएं हैं। यहाँ तक की लोकतान्त्रिक चुनावो में भी जाति एक बड़े कारक के रूप में विद्यमान है।

- **राष्ट्रीय एकता हेतु समस्या :-**

जाति प्रथा न केवल हमारे मध्य वैमनस्यता को बढ़ाती है बल्कि ये हमारी एकता में भी दरार पैदा करने का काम करती है। जाति प्रथा प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क में बचपन से ही ऊंच-नीच, उत्कृष्टता निकृष्टता के बीज बो देती है। जो कालांतर में क्षेत्रवाद का कारक भी बन जाती है। जाति प्रथा से आक्रांत समाज की कमजोरी विस्तृत क्षेत्र में राजनीतिक एकता को स्थापित नहीं करा पाती तथा यह देश पर किसी बाहरी आक्रमण के समय एक बड़े वर्ग को हतोत्साहित करती है। स्वार्थी राजनीतिज्ञों के कारण जातिवाद ने पहले से भी अधिक भयंकर रूप धारण कर लिया है, जिससे सामाजिक कटुता बढ़ी है।

- **विकास के प्रगति में बाधक :**

जातिगत द्वेष से उत्पन्न तनाव, अथवा राजनैतिक पार्टियों द्वारा किये गए जातिगत तुष्टिकरण से राष्ट्र की प्रगति बाधक होती है।

निःसंदेह जाति प्रथा एक सामाजिक कुरीति है। ये विडंबना ही है कि देश को आजाद हुए सात दशक से भी अधिक समय बीत जाने के बाद भी हम जाति प्रथा के चंगुल से मुक्त नहीं हो पाएं हैं। हालांकि एक लोकतांत्रिक देश के नाते संविधान के अनुच्छेद 15 में राज्य के द्वारा धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान के आधार पर नागरिकों के प्रति जीवन के किसी क्षेत्र में भेदभाव नहीं किए जाने की बात कही गई है। लेकिन विरोधाभास है कि सरकारी औहादे के लिए आवेदन या चयन की प्रक्रिया के वक्त जाति को प्रमुखता दी जाती है।

© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN : 2348 - 5612 | Volume : 09 , Issue : 04 | October - December 2022

जाति प्रथा न केवल हमारे मध्य वैमनस्यता को बढ़ाती है बल्कि ये हमारी एकता में भी दरार पैदा करने का काम करती है। जाति प्रथा प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क में बचपन से ही ऊंच-नीच, उत्कृष्टता निकृष्टता के बीज बो देती है। अमुक जाति का सदस्य होने के नाते किसी को लाभ होता है तो किसी को हानि उठानी पड़ती है। जाति श्रम की प्रतिष्ठा की संकल्पना के विरुद्ध कार्य करती है और ये हमारी राजनीति दासता का मूल कारण रही है।

जाति प्रथा से आक्रांत समाज की कमजोरी विस्तृत क्षेत्र में राजनीतिक एकता को स्थापित नहीं करा पाती तथा यह देश पर किसी बाहरी आक्रमण के समय एक बड़े वर्ग को हतोत्साहित करती है। स्वार्थी राजनीतिज्ञों के कारण जातिवाद ने पहले से भी अधिक भयंकर रूप धारण कर लिया है, जिससे सामाजिक कटुता बढ़ी है।

जाति प्रथा के कारण ही भारत के विभिन्न धार्मिक समूह सामाजिक और राजनीतिक रूप से एक दूसरे के समीप नहीं आ सके जिसके कारण एक सुदृढ़ समाज का निर्माण नहीं हो सका। जाति प्रथा ने अंततोगत्वा देश में विभाजन ही पैदा किया। 'जाति प्रथा उन्मूलन' नामक ग्रंथ में अंबेडकर कहते हैं कि 'प्रत्येक समाज का बुद्धिजीवी वर्ग यह शासक वर्ग ना भी हो फिर भी वो प्रभावी वर्ग होता है।' केवल बुद्धि होना यह कोई सद्गुण नहीं है। बुद्धि का इस्तेमाल हम किस बातों के लिए करते हैं इस पर बुद्धि का सद्गुण, दुर्गुण निर्भर है और बुद्धि का इस्तेमाल कैसा करते हैं यह बात हमारे जीवन का जो मकसद है उस पर निर्भर है। यहां के परंपरागत बुद्धिजीवी वर्ग ने अपनी बुद्धि का इस्तेमाल समाज के फायदे के लिए करने की बजाए समाज का शोषण करने के लिए किया है।

जाति प्रथा के विषय में महात्मा गांधी तथा भीम राव आंबेडकर

महात्मा गाँधी तथा भीम राव आंबेडकर भारत में जातिगत सुधारो के बड़े समर्थनकर्ता माने जाते हैं। यद्यपि इनका लक्ष्य समान था परन्तु इनके मध्य कई प्रकार की वैचारिक भिन्नताएं थीं।

एक ओर जहाँ गाँधी जी हिन्दू धर्म के अंदरसुधार कर जाति प्रथा की समस्याओं को समाप्त करना चाहते थे ,वहीँ अम्बेडकर हिन्दू धर्म से अलग होकर दलितोद्धार चाहते थे।

गाँधी जी जहाँ वेद, एवं ग्रंथो की उपयुक्त व्याख्या से हरिजनोद्धार की कामना करते थे वहीँ अमबेडकर ग्रंथो में विश्वास नहीं करते थे।

गाँधी जी हरिजन को हिन्दू धर्म का अंग मानते थे वहीँ अम्बेडकर उन्हें हिन्दू समाज के बाहर धार्मिक अल्पसंख्यक मानते थे। इसी मत विरोध की एक संधि पूना पैक्ट के नाम से जानी जाती है।

जहाँ गाँधी जी ग्राम स्वराज की बात करते थे वहीँ अम्बेडकर गावो को जातिवाद का प्रमुख केंद्र, मानकर शहरीकरण पर जोर देते थे।

भारत में जाति व्यवस्था की उत्पत्ति से संबंधित सिद्धांत:

- **पारंपरिक सिद्धांत:**

इस सिद्धांत के अनुसार ब्रम्हांड के निर्माता ब्रम्हां जी ने जाति व्यवस्था का निर्माण किया था। ब्रह्मा के जी के विभिन्न अंगों से जैसे उनके मुख से ब्राह्मणों का, हाथ से क्षत्रिय, वैश्य पेट से और इसी तरह अन्य विभिन्न जातियों का जन्म हुआ। विभिन्न जातियों के लोग अपने मूल स्रोत के अनुसार कार्य करते हैं। प्राचीन भारत में विभिन्न उपजातियां इन जातियों से पैदा हुईं और इसने मनु के वर्णन के अनुसार प्राचीनकाल-संबंधी व्याख्या प्राप्त की है। इस सिद्धांत की आलोचना की गई है क्योंकि यह एक अलौकिक सिद्धांत है और इसके आधार अस्तित्व सिर्फ दिव्य (कल्पनीय) हैं।

- **राजनीतिक सिद्धांत:**

इस सिद्धांत के अनुसार ब्राहमण समाज पर शासन करने के अलावा उन्हें पूर्ण नियंत्रण में रखना चाहते थे। इसलिए उनके राजनीतिक हित ने भारत में एक जाति व्यवस्था बनाई। जिसमें एक

फ्रांसीसी विद्धान निबे दुबास ने मूल रूप से इस सिद्धांत को आगे बढ़ाया, जो भारतीय विचारकों डॉ. घुर्ये जैसे लोगों से भी समर्थित थे।

- **धार्मिक सिद्धांत:**

यह माना जाता है कि विभिन्न धार्मिक परंपराओं ने भारत में जाति व्यवस्था को जन्म दिया था। राजा और ब्राह्मण जैसे धर्म से जुड़े लोग उच्च पदों पर आसीन थे लेकिन अलग-अलग लोग शासक के यहां प्रशासन के लिए अलग-अलग कार्य करते थे जो बाद में जाति व्यवस्था का आधार बन गए थे। इसके साथ साथ, भोजन की आदतों पर प्रतिबंध लगाया जो जाति व्यवस्था के विकास के लिए प्रेरित हुआ। इससे पहले दूसरों के साथ भोजन करने पर कोई प्रतिबंध नहीं था क्योंकि लोगों का मानना था कि उनका मूल एक पूर्वज से था। लेकिन जब उन्होंने अलग-अलग देवताओं की पूजा शुरू की तो उनकी भोजन की आदतों में बदलाव आया। इसने भारत में जाति व्यवस्था की नींव रखी।

- **व्यावसायिक सिद्धांत:**

नेस्फील्ड ने मूल रूप से व्यावसायिक नाम का सिद्धांत दिया, जिसके अनुसार भारत में जाति किसी व्यक्ति के व्यवसाय के अनुसार विकसित हुई थी। जिसमें श्रेष्ठ और निम्नतर जाति की अवधारणा भी इस के साथ आयी क्योंकि कुछ व्यक्ति बेहतर नौकरियां कर रहे थे और कुछ कमजोर प्रकार की नौकरियों में थे। जो लोग पुरोहितों का कार्य कर रहे थे, वे श्रेष्ठ थे और वे ऐसे थे जो विशेष कार्य करते थे। ब्राहमणों में समूहीकृत समय के साथ उच्च जातियों को इसी तरह से अन्य समूहों को भी भारत में विभिन्न जातियों के लिए अग्रणी बनाया गया।

- **विकासवादी सिद्धांत:**

जाति व्यवस्था सिर्फ अन्य सामाजिक संस्था की तरह है जो विकास की प्रक्रिया के माध्यम से विकसित हुई है।

- **कई सिद्धांत या कई लोगों का सिद्धांत:**

प्रोफेसर हट्टन ने इस सिद्धांत को स्थापित किया। जाति व्यवस्था आर्यों से पहले से ही भारत में थी लेकिन आर्यों ने हर किसी पर यह लागू करके जाति व्यवस्था को स्पष्ट कर दिया था। भारत में, अजनबियों के संपर्क में आने या छूने का डर था क्योंकि छूने से अच्छा या बुरा हो सकता है। इसलिए लोगों ने खुद को दूसरों के पास आने से रोकना शुरू कर दिया और इसने खाने की आदतों पर प्रतिबंध लगा दिया।

यह माना जाता है कि भारत में जाति व्यवस्था एक व्यक्ति के सिद्धांत या कारक का परिणाम नहीं है बल्कि यह कई कारकों का परिणाम है।

निष्कर्ष

भारत सरकार ने तथा संविधान निर्माताओं ने कुछ नीतियों एवं नियमों से इसे दूर करने का प्रयास किया, परंतु यह व्यवस्था भारतीय समाज मे इस कदर व्याप्त है जैसे दूध मे मिलावट का पानी। वास्तव में जातिप्रथा समाज की एक भयानक विसंगति है जो समय के साथ साथ और प्रबल हो गई। यह भारतीय संविधान में वर्णित सामाजिक न्याय की अवधारणा कजी प्रबल शत्रु है तथा समय समय पर देश को आर्थिक ,सामाजिक क्षति पहुँचाती है। निस्संदेह सरकार के साथ साथ , जन सामान्य , धर्म गुरु , राजनेता तथा नागरिक समाज का उत्तरदायित्व है कि यह विसंगति जल्द से जल्द समाप्त हो।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. संजीवनी मेहरदा - डॉ. अम्बेडकर युग सृष्टा पुरूष - अम्बेडकर एवं सामाजिक न्याय पृ.सं. 32, रावत पब्लिकेषन, जयपुर, दिल्ली, 1992 |
2. शंभुनाथ - सामाजिक क्रांति के दस्तावेज, वाणी प्रकाषन, 905-06 |
3. डॉ. अम्बेडकर - इनिहिलेषन आफ कॉस्ट, पृ.सं. 81 |
4. क्यों में हिन्दू - इलेस्ट्रेटेड वीकली, दि. 21-11-75, पृ.सं. 22 |
5. डॉ. एल.बी. मेहरदा - अम्बेडकर व सामाजिक न्याय, रावत पब्लिकेषन

© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN : 2348 - 5612 | Volume : 09 , Issue : 04 | October - December 2022

6. विजय पुजारी - डॉ. भीमराव अम्बेडकर जीवन दर्षन, गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली, 2005, पृ.सं. 31-32 |
7. रोनाल्ड एम. डवाकिन (विधि संस्थान नई दिल्ली द्वारा प्रकाषित विधि व सामाजिक परिवर्तन में लेख, खोये अवसर, पृ.सं. 187 |
8. भगवान दास म्क्जै चवाम |उड्मकांत, पृ.सं. 75 |
9. अनिरूद्ध प्रसाद - आरक्षण सामाजिक न्याय एवं राजनैतिक सन्तुलन, रावत पब्लिकेषन, जयपुर, 1991, पृ. सं. 44, 142, 143 |
10.डॉ. बी. आर. अम्बेडकर - व्यक्तितत्व व कृतित्व, समता साहित्य सदन, जयपुर, 1933, पृ.सं. 136 |
11.एम. सी. वाड - कॉस्ट एण्ड द लॉ इन इण्डियाँ, 1985, पृ.सं. 50 |
12.थानसिंह जाटव - अम्बेडकर व सामाजिक न्याय- समाज व्यवस्था व प्रदूषण, पृ.सं. 168|